ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14 Vol-5, No.-II,PP-1-3, YEAR-Dec.2016

वेदों में पर्यावरण–मीमांसा

❑ डॉ0 संतोष कुमार पाण्डेय

वेद भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के मूल स्तम्भ हैं। वैदिक काल से जीव–जगत् सम्बन्धों पर चिन्तन–मनन होता आ रहा है। वैदिक काल से ही भारतीय मनीषा पर्यावरण –मीमांसा को महत्त्व देती रही है और इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करती रही कि लोकरक्षण हेतु प्रकृति की संरक्षा आवश्यक है– 'रक्षायै प्रकृति पातु लोकः।' यही कारण है कि वेद चतुष्टय में आकाश, पाताल, नदी, सागर, पर्वत, वनस्पति, औषधि, पृथ्वी, नक्षत्र, जीव–जन्तु, पशु–पक्षी, मनुष्य–देव सबके मंगल एवं समृद्धि की कामना की गई है। वेदों में पर्यावरण चेतना व पर्यावरण संरक्षण की गहन मीमांसा की गई है। मानव समाज व सभ्यता को प्रकृति द्वारा प्रदान की गई सर्वश्रेष्ठ व मूल्यवान् निधि पर्यावरण का संरक्षण आधुनिक युग का प्रमुखतः दायित्व है। वायु, जल, भूमि, वृक्ष और वनस्पतियाँ पर्यावरण के घटक तत्त्व और मूल आधार हैं। इनमें से प्रत्येक तत्त्व लोक में जीवन शक्ति के लिए उपयोगी, आवश्यक व अनिवार्य हैं। मानव–जीवन के कल्याण हेतु पर्यावरण का महत्त्व उसकी सुरक्षा, प्रकृति के साथ सामीप्य, रोगों के उपचार व स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेकशः उपयोगी उपाय ऋषियों ने वेदमंत्रों में उद्घाटित किए हैं। वेदों ने पर्यावरण चेतना व संरक्षण को लोक–जीवन से संयुक्त किया है। प्रकृति के साहचर्य में भारतीय संस्कृति व लोक–जीवन फला–बढ़ा है। द्यावा–पृथ्वी, जल आदि एकादश पर्यावरण शोधक तत्त्वों से पर्यावरण शुद्धि व संरक्षण होता रहता है। परिषुद्ध पर्यावरण में निवास करने वाले मनुष्य, पशु–पक्षी आदि सभी सभी निरोग व सुखपूर्वक जीवन का आनन्द प्राप्त करते हैं। प्रकृति का प्रत्येक तत्त्व मनुष्य, पशु–पक्षी को उपकृत करने में सन्निहित है, जो मधुर लोक–जीवन का आधार है। पर्यावरण चेतना एवं संरक्षण मीमांसा के भी मूल स्रोत वेद ही हैं। वैदिक ऋषियों ने मानव–जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्त्व, प्रकृति से सानिध्य, संवेदनशीलता, पर्यावरण संरक्षण एवं आरोग्य सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञानसम्पदा से वैदिक वाङ्मय को पल्लवित पुष्पित किया।

वेद भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के मूल स्तम्भ हैं। वेदों से ही उदात्त आदर्श के रूप में विश्व–संस्कृति और विश्व–सभ्यता का भाव पल्लवित व पुष्पित हुआ है। वेद जीवन और जगत् के सत्य का अनुसन्धान है। जीवन के तत्त्व अत्यन्त जटिल हैं एवं जगत् के रहस्य अतिशय गंभीर हैं। मानव की चेतना युगों–युगों से इन तत्त्वों और रहस्यों के उद्घाटन और सामंजस्य के लिए प्रयत्नशील रही है। भारत वर्ष प्रकृति नटी का लीला स्थल है। यहाँ वैदिक काल से ही जीव–जगत् के सम्बन्धों पर चिन्तन–मनन चलता आ रहा है। भारतीय संस्कृति का जन्म ही अरण्य में हुआ। इन्हीं अरण्यों में मानव निवास करता था और मनुष्य को इस बात

एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत–विभाग), एम0डी0पी0जी0 कालेज, प्रतापगढ़ (उ0प्र0)

ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14

Vol-5, No.-II,PP-1-3, YEAR-Dec.2016

का बोध हुआ कि प्रकृति में सर्वत्र जीवन है। प्रकृति में व्याप्त वायु, जल, मिट्टी, पेड़–पौधे, नदी, पहाड़ आदि से जीव–जन्तुओं एवं मानव का एक संतुलन व्याप्त है, जो हमारे अस्तित्त्व का आधार है। जीवनधारी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति पर आश्रित है। यदि सत्यदृष्टि से कहा जाये तो आधुनिक मानव सभ्यता को प्रकृति द्वारा प्रदान की गई सबसे मूल्यवान् निधि पर्यावरण है, जिसका संरक्षण एक बड़ा दायित्व है। वैदिक काल से भारतीय मनीषा पर्यावरण के संदर्भ में इस तथ्य को उजागर करती रही है कि लोकरक्षण हेतु प्रकृति की रक्षा करोः ''रक्षायै प्रकृति पातु लोकः।'' यही कारण है कि वेदों में आकाश, पाताल, नदी, सागर, पर्वत, वनस्पति, औषधि, पृथ्वी, नक्षत्र, जीव–जन्तु, पशु–पक्षी, मनुष्य–देव, सबके मंगल एवं समृद्धि की कामना की गयी है। पर्यावरण में स्वास्थ्य व शान्ति होना ही मानव कल्याण का पर्याय है। वेदों के समस्त उद्घोष समष्टिगत एवं लोककल्याणपरक हैं। वेदों में सृष्टि जीवनदायी तत्त्वों के विस्तृत एवं सूक्ष्म विश्लेषण के साथ ही अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी आकाश इत्यादि से सम्बन्धित प्रार्थनाएँ लोककल्याण एवं जनकल्याण हेतु की गई हैं। इसके साथ ही द्युलोक, अंतरिक्ष लोक एवं पृथ्वी लोक सुख–शांतिदायक हो, जल, औशधि, वनस्पतियाँ तथा विश्वदेव तथा ब्रह्म और समस्त ब्रह्माण्ड शांत एवं आनन्दकारी हो ऐसे पुण्य भाव वेदमंत्रों में ध्वनित हुए हैं–

''द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः
शान्तिरोशधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्वं शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।''[1]

ऋग्वेद में 'ऋत' शब्द का उल्लेख है, जिसका निहितार्थ ब्रह्माण्ड का सुव्यवस्थापन (Cosmic Order) या नैतिक संस्थान (Moral Order) है। 'ऋत' से बाहर कुछ भी नहीं है। सत्यमार्ग या ऋतमार्ग पर चलना चाहिए। इससे सुख–शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है, यह सत्त्व–मार्ग है, इससे निरन्तर उन्नति, सर्वांगीण विकास, समृद्धि, स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। वेदमंत्रों में एक आदर्श जीवन की संकल्पना, प्रकृति को अपना मार्गदर्शन स्वीकार करना ही ऋषियों की प्रार्थनाओं का प्रमुख उद्देश्य है। प्रकृति के नियमों के अनुकूल जीवन व्यतीत करना ही उन्नति का प्रतीक है– ''ऋतस्य पथा प्रेत, वि स्वः पृय।''[2] मानव जगत् की भांति प्रकृति भी नैतिक एवं चिन्मय है, क्योंकि प्राकृतिक व्यवहार व घटनायें पूर्णरूपेण व्यवस्थित एवं नियमबद्ध हैं। यह प्रकृति अनुपम मूल्यों की खान है और सर्वथा बुद्धिसंगत व तर्कसंगत है। तात्पर्यतः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसी 'ऋत' (प्राकृतिक नियम) से जीवित, अनुशासित और व्यवस्थित है। प्राकृतिक नियम अति कठोर व विध्वंसकारी हैं। इन प्राकृतिक नियमों का सूर्य–चन्द्र से लेकर अति लघु जीव तक पालन करता है। उपनिषदों में यह माना गया है कि ऋत के नियम अलंघ्य और बहुत कठोर हैं। इसी प्राकृतिक नियम से सूर्य नियमतः उदय और अस्त होता है। वायु चलती है, पृथ्वी एवं समस्त संसार प्रतिक्षण घूम रहा है। प्रत्येक अणु व परमाणु इस नियम से ही अपनी कक्षा में घूम रहे हैं। यम और मृत्यु उसी के अनुशासन में कार्य कर रहे हैं– *'भयात् तपति सूर्यः, मृत्युर्धावति पंचमः।'* ऋग्वेद में 'ऋत' को ज्योतिष्चक्र के उस रूप में व्याख्यायित किया गया है, जिसके निर्देशन में या प्रकाशपुंजों की गतियाँ, नियमित व नियंत्रित होती है। शुक्रनीति में कहा गया है कि नैतिक

ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14

संस्थान–प्राकृतिक नियम (ऋृत) सभी का उपजीवक और लोकस्थिति का कारण है: *''सर्वोपजीवकं लोकस्थितिकृन्नीति शास्त्रकम्''*।[3] हितोपदेश का दावा है कि नीति के विपन्न होने पर सम्पूर्ण जगत् नष्ट हो जाता है: *'' विपन्नायां नीतौ सकलमवशं सीदति जगत्*।''[4] ऋग्वेद में 'ऋत–पथ' को सुगम एवं निष्कंटक स्वीकार किया गया है और यह माना गया है कि यज्ञ इसी सरल मार्ग से चलता है। यज्ञ स्वतः संचालित प्रक्रिया है और प्रकृति से निरन्तर सम्पादित होता रहता है। इसी यज्ञ–प्रक्रिया से पर्यावरण का शोधन होता रहता है और प्रकृति–चक्र नियमित एवं संतुलित रहता है।

मनुष्य सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। ईश्वर की इस सर्वश्रेष्ठ रचना और मानव समाज एवं सभ्यता को प्रकृति द्वारा प्रदान की गई सर्वश्रेष्ठ एवं मूल्यवान् निधि पर्यावरण का संरक्षण आधुनिक युग का बड़ा दायित्व है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में यह आवश्यक है कि प्रकृति द्वारा प्रदत्त इस निधि का बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से उपयोग आवश्यक है। पर्यावरणीय चेतना व पर्यावरण संरक्षण प्रत्येक युग की प्रमुख माँग रही है। शाब्दिक अर्थों में हमारे चारों ओर छाया आवरण (परि+आवरण = पर्यावरण) ही पर्यावरण है– *''परिसमन्तात् आवरणं–पर्यावरणम्।'* अर्थात् जिसके अनुसार जो सब ओर से सृष्टि को व्याप्त किए है, वही पर्यावरण है। इसी आवरण में सजीव और निर्जीव सभी तत्त्व विद्यमान हैं। इस परिप्रेक्ष्य से पर्यावरण के घटक तत्त्व हैं– वायु, जल, भूमि, वृक्ष और वनस्पतियाँ। इस हिसाब से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, अग्नि, आकाश, ध्वनि, वृक्ष, वनस्पति आदि पर्यावरण के मूल आधार हैं। इन सभी तत्त्वों के चतुर्दिक हम सभी घिरे हुए हैं और इन्हीं के मध्य हमारा जीवन संभव होता है। वेद में उक्त तत्त्वों के लिए 'छन्दस्' शब्द प्रचलित है, जिसका अर्थ है– आवरक या पर्यावरण। इन घटक तत्त्वों में से प्रत्येक तत्त्व लोक में जीवन शक्ति के लिए आवश्यक, उपयोगी व अनिवार्य हैं। इन जीवनदायक तत्त्वों के अभाव में प्राणियों का जीवित रहना असंभव ही है। ये तत्त्व अनादि काल से एक निश्चित अनुपात में प्रकृति में स्थित हैं। यद्यपि मानव अपनी रक्षा व विकास हेतु इन तत्त्वों में सदैव छेड़–छाड़ (दोहन) करता रहा है। आज के परिवेश में यह दोहन इतना अधिक हो गया है कि पर्यावरण का संतुलन बिगड़ने लगा है। जिससे पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है। यांत्रिक उपकरणों का अधिकाधिक प्रयोग, वृक्ष–वनस्पतियों की निर्दयतापूर्वक कटाई तथा इसी क्रम में मनुश्य इतना अधिक धुँआ, कचरा उर्वरक, तेज ध्वनि तथा विविध प्रकार के हानिकारक गैसों का प्रकृति में उत्सर्जन करने लगा है जिससे उसकी शुद्धता नष्ट हो गयी है। जीवनी–प्राणदायिनी शक्ति आक्सीजन के एक मात्र स्रोत वृक्ष–वनस्पतियों की निर्दयतापूर्वक कटाई से मनुष्य का जीवन संकटग्रस्त हो रहा है। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण का संरक्षण करने एवं पर्यावरण प्रदूषण रोकने हेतु जलवायु, वृक्षों एवं वनस्पतियों को प्रमुखतम कारक स्वीकार किया है–

''त्रीणि छंदांसि कवयो वि येतिरे,
पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः,
तान्येकस्मिन् भुवन अर्पितानि।।''[5]

पर्यावरण हमारे अस्तित्त्व का मूल आधार है। भारतवर्ष के ऋषियों–मुनियों ने पंच भौतिक तत्त्वों को देवों का रूप दिया है। मानव–जीवन के कल्याण हेतु पर्यावरण का महत्त्व उसकी सुरक्षा, प्रकृति के साथ सामीप्य, संवेदनशीलता,

ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14

रोगों के उपचार तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेकशः उपयोगी उपाय ऋषियों ने उद्घाटित किये। पर्यावरण चेतना व संरक्षण को वैदिक ऋषियों ने जन–जीवन से संयुक्त किया है। उनकी सूझ–बूझ गहन व व्यापक रही है। प्रकृति के साहचर्य में ही भारतीय संस्कृति फली–फूली। वैदिककालीन ऋषियों ने समाज व पर्यावरण के समस्त घटक तत्त्वों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु न केवल अथक प्रयास किया अपितु उसके संरक्षण के माहात्म्य को भी बढ़ावा दिया। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश– ये पंचमहाभूत प्रदूषणग्रस्त न हों इस दिशा में प्रत्यक्षतः–परोक्षतः वैदिक ऋषि प्रयासरत रहे।

वैदिक ऋचाओं में पर्यावरण–संरक्षण के संदर्भ में ऋषियों ने पर्याप्त मंत्र उद्धृत किये। पृथ्वी, जल, वायु और आकाश की शुद्धि और इन तत्त्वों को प्रदूषण मुक्त रखने हेतु अनेक उपाय वैदिक मंत्रों में सन्निहित हैं। अथर्ववेद के अनुसार जल, वायु एवं औषधियाँ– ये तीन पर्यावरण के संघटक तत्त्व हैं। इनके नाम और रूप असंख्य होने के कारण इन्हें 'पुरुरूपम्' कहा गया है। अथर्ववेद में पर्वत, जल, वायु, पर्जन्य और अग्नि पर्यावरण के शोधक तत्त्व के रूप में वर्णित हैं जो प्रदूषण नष्ट करने वाले भी हैं– ''ये पर्वता सोमपृष्ठा आपः वात पर्जन्य आदिग्नस्ते क्रव्यादमशीशमन्।''[6] ऋग्वेद में द्यावापृथ्वी, जल, औषधियाँ, वायु, मेघ, नदी, वन, पर्वत, सूर्य, उषा और अग्नि– इन एकादश पर्यावरण शोधक तत्त्वों का वर्णन हुआ है जो पर्यावरण संरक्षण के ही महत्त्वपूर्ण कारक हैं। अथर्ववेद में पर्यावरण शुद्धि और संरक्षण के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि जहाँ पर्यावरण परिशुद्ध रहता है वहाँ मनुष्य, पशु–पक्षी आदि सभी निरोग एवं सुखपूर्वक जीवन का आनन्द प्राप्त करते हैं–

''सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम।।''[7]

पर्यावरण को संरक्षित रखने के लिए प्रकृति और मानव दोनों का पारस्परिक सहयोग परमावश्यक है। सम्पूर्ण प्रकृति प्राणियों की चेतना का मूल आधार है। आदि काल से ही मानव पर्यावरण से ही पोषित एवं संरक्षित होता रहा है। पृथ्वी उसका निवास स्थान है, वायु उसका प्राण है, जल जीवन है, सूर्य उर्जास्रोत है और वनस्पति एवं वृक्षादि उसके धारक, पोषक व रक्षक हैं। प्रकृति का ऐसा कोई भी तत्त्व नहीं है जिससे मनुष्य उपकृत न हुआ हो। आज यदि वह उत्थान के उत्कर्ष को छू रहा है तो वह पर्यावरण के बल पर ही, जो उसे समस्त प्रकार के संसाधनों को प्रदत्त करता है। इस प्रकार यदि मूल प्रकृति मानव द्वारा बिना माँगे ही उसकी समस्त, आवश्यकताओं की पूर्ति में सदैव तत्पर रहती है तो बुद्धि–विवेक से युक्त मानव का भी यह परम कर्त्तव्य है कि वह पर्यावरण की सुरक्षा व संरक्षण में सदैव तत्पर रहे।

पर्यावरण के तीन कारक मृदा, वायु और तापमान वेदों के पृथ्वीलोक, अन्तरिक्षलोक तथा आदित्यलोक या द्युलोक हैं। वेदों में द्युलोक को पिता तथा पृथ्वीलोक को माता कहा गया है। अन्तरिक्षलोक इनके द्वारा उत्पन्न है, अतः पुत्रवत् है। इस प्रकार तीनों कारकों से युक्त यह जैवमण्डल एक परिवार के समान है, जिनमें से एक की भी क्षति सम्पूर्ण पर्यावरण संतुलन को अव्यवस्थित कर सकती है। मूलतः ये तीनों मण्डल एक–दूसरे के पूरक हैं, इनमें से किसी एक के भी नष्ट होने पर जीव और जीवन का अस्तित्त्व संभव नहीं है। अतः हम तीनों मण्डलों से प्राप्त ऊर्जा का समानुपातिक प्रयोग करके ही हम पर्यावरण का संरक्षण व संवर्धन कर सकते

ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14

हैं। ऋग्वेद में इस तथ्य पर जोर है कि प्रकृति का अतिक्रमण तो देवों के लिए निषिद्ध है तो मनुष्य की क्या बात?– *''अतिक्रम्य न गच्छति मरूतः।'' एवं ''मरूतो नाह रिष्यथ।'*[8] वास्तव में प्रकृति एवं उसके तत्त्व नियमानुसार एवं अनुशासन में ही कार्य करते हैं। अतः मानव का भी यह परम कर्तव्य है वह भी अनुशासित एवं नियमबद्ध आचरण करे, क्योंकि ऐसा करने से प्रकृति की संरक्षा व सुरक्षा तो होती ही है साथ ही ये प्राकृतिक नियम हमें कल्याण और शान्ति भी प्रदान करते हैं। अथर्ववेद में इस तथ्य का उल्लेख है कि सभी मनुष्य प्रकाशमान सविता के प्रकाश में अपने कर्मों का सम्पादन करें और अन्नादि पदार्थ हमें शान्ति से प्राप्त हो रहे हैं– *''देवस्य सवितः सर्वे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः।।'*[9] यहाँ सविता के प्रकाश से तात्पर्य यही है कि पर्यावरण के नैसर्गिक चक्र को तोड़े बिना हम अनुकूल कार्य करते रहें। पदार्थों की सबको प्राप्ति में ही पदार्थों का सुरक्षा–भाव निहित है। पर्यावरण की संरक्षा हेतु ऋषियों ने प्रकृति से ही प्रेरणा लेने का संकेत दिया है और उनके गुणों को ग्रहण करने को कहा है। वेदों के अनुसार पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा स्थल है जिसमें सभी जीवों का पालन–पोषण व रक्षण होता है। 'माता भूमिः पुत्रोहम पृथिव्याः'– वेदों का यह उद्‌गार भूमि रूपी माता की रक्षा के अन्तर्भाव में निहित है। अथर्ववेद का सम्पूर्ण पृथ्वी सूक्त पृथ्वी के साथ मानवीय सम्बन्ध, पृथ्वी के साथ आत्मीयता, संवेदना, समृद्धि, कर्त्तव्य तथा रक्षा आदि का संदेश देता है। इस सूक्त में स्पष्ट रूप से पृथ्वी को किसी भी प्रकार की क्षति पहुँचाने का निशेध किया गया है– *''यत्ते भूमि विखनामि क्षिप्रं तदापि रोहतु। मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम।।'*[10] ऋग्वेद के अनुसार नदी, खानों, समुद्रों तथा पर्वतों से हम उतना ही ग्रहण करें जो हमारे लिए पर्याप्त व सुखकारी हो, क्योंकि इसके विपरीत किया गये आचरण से पृथ्वी काँपने लगती है– *''तत्सिंधौ तदसिकन्यां यत्समुदेशु मरूत सुबर्हिशः। तत्पर्वतेशु भेशजम्।।'*[11] यह पृथ्वी गुरूत्व शक्ति से युक्त है अतः इसका संरक्षण अत्यावश्यक है। ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है यह द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, वनस्पतियाँ तथा जल एक ही बार उत्पन्न होता है, पुनः पुनः नहीं, अतः इनका संरक्षण आवश्यक है–*''सकृद् द्यौरजायत सकृदभूमिरजायत। पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदेन्यो नानु जायते।।'*[12]

पर्यावरण एवं पृथ्वी का संरक्षण मानव का परम कर्त्तव्य है और यह तभी संभव है जब वह प्रतिबद्ध होकर पर्यावरण एवं पष्थ्वी के रक्षार्थ करणीय कार्यों में अपना पूर्ण सहयोग दें। वास्तव में सम्पूर्ण पर्यावरण सहित यह पृथ्वी सुन्दर रूपवाली, शान्तिकारक, सुगन्धयुक्त, सुख देने वाली अर्थात् जलराशि वाली, इच्छाओं को परिपूर्ण करने वाली, स्तुतियोग्य और कल्याणमयी है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह द्युलोक एवं पृथ्वीलोक का संरक्षण करे क्योंकि वह पुत्र है और द्यावापृथ्वी रूपी माता–पिता के प्रति उसका यह कर्त्तव्य है। पर्यावरण की रक्षा में ही प्राणिमात्र की रक्षा है। अथर्ववेद में यह तथ्यात्मक रूप में कहा गया है कि इन्द्रियाँ इस प्राणी की रक्षा करे, जिससे यह प्राणी दोषरहित होकर जीवन व्यतीत कर सके– *''त्रायन्तामिमं देवस्त्रायन्तां गणाः विश्वभूतानि यथा यरपरपा असत।'*[13] ऋग्वेद के अनुसार सभी व्यक्ति उसी नाव पर चढना चाहते हैं जो छिद्ररहित हो अर्थात् विनाश का विचार भी मन में न हो जिसमें पूर्ण सुख, ऐश्वर्य तथा

उत्तम आचरण हो और जिसको चलाने वाले दाण्डे भी मजबूत हों– ´

'सुत्रामाणं पृथ्वीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवी नावं स्वरित्रामनागसमश्रवनतीमा रूहेमा स्वस्तये ।'[14]

इस प्रकार छिद्रहीन नाव के साथ दी गई उपमा पर्यावरण संरक्षण का स्वच्छदर्पण है, जिसके माध्यम से सामान्य प्राणी भी पर्यावरण के नष्ट होने के दृश्य का आभास कर सकता है और अपने लिए पर्यावरण के प्रति कर्तव्यों को समझ सकता है। अथर्ववेद के भूमि सूक्त की इस उक्ति *'यस्या हृदयं परमे व्योमन* का निहितार्थ ही यही है कि जिस तरह हृदय की धड़कन पर प्राणी का जीवन निर्भर है उसी प्रकार अन्तरिक्ष अर्थात् परमव्योम की सुरक्षा में ही पृथ्वी की सुरक्षा है। अन्तरिक्ष रूपी हृदय के नष्ट होते ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नाष सुनिश्चित है।

दर्शन की भाषा में संतुलित पर्यावरण को जीवित सम्पूर्ण (Organic Whole) कहा जा सकता है। जिस प्रकार समुद्र की गर्जना असंख्य तरंगों की ध्वनियों का प्रतिफल है, उसी प्रकार यह सृष्टि अनन्त घटनाओं की जीवित समष्टि है। व्यष्टि में समष्टि का प्रतिबिम्ब है, अणु में विराट् भरा पड़ा है। इस प्रकार प्रकृति की सभी घटनाएँ संयोगी न होकर परस्पर सहयोगी हैं। उनके पार्थक्य में लक्ष्य की एकतन्त्रता है। जिस प्रकार 'एकतान संगीत' विविध वाद्यों की विशिष्ट स्वरलहरियों का अति संतुलित सामंजस्य है, उसी प्रकार प्रकृति के सभी घटक अनुशासित ढंग से क्रियाशील हैं कि मानों वे विश्वात्मा द्वारा शासित हो रहे हैं। प्रकृति में एक विलक्षण अभियोजन क्षमता है। सभी का अस्तित्त्व एक–दूसरे पर निर्भर है। तितिलियों और मधुमक्खियों का अस्तित्व फूल–पौधों पर निर्भर है और फूल–पौधों का भविष्य उनके द्वारा संरक्षित है। मधुमक्खियों द्वारा निर्मित मधु मनुष्य के स्वास्थ्य का वर्धक है। मनुष्य प्रकृति की गोद में बैठकर ज्ञान–विज्ञान की षिक्षा लेता रहा है। चिड़ियों ने हमें उड़ना सिखाया, चित्रित पंख वाले मोरों ने हमें शान–शौकत सिखाया, कोकिल–प्रकूज ने संगीत सिखाया, शेरों ने रण–कौशल सिखाया, पशुओं ने अमष्त सदृश दूध पिलाया, मछलियों ने हमें तैरना सिखाया और वनस्पतियों–पेड़–पौधों ने अन्न, औषधि एवं फल खिलाकर जीवन–दान दिया। आज हम इतने अविवेकी और कृतघ्नी हो गये हैं कि उनको मिटाकर स्वयं मिटना चाहते हैं। हमारा खान–पान, आहार–विहार, आचार–विचार, भाव और कर्म, अन्तर और बहिर जगत्, दिन–रात, ऋतु–मास आदि सभी का जुड़ाव भी पर्यावरण से कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। इसीलिए वैदिक ऋषि निरन्तर औषधि, वनस्पति, अन्न, वन, जल और अन्तरिक्ष के साथ मानव के मधुर सम्बन्ध के बने रहने की मंगलकामना करते रहे हैं–

''मधुमतीरोषेधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ।।''[15]

पर्यावरण हमारे अस्तित्व का आधार है। विश्व का कोई भी विज्ञान प्राकृतिक हवा–पानी का निर्माण नहीं कर सकता है। अतएव प्रकृति–प्रदत्त तथा मानव के अपने पुरुषार्थ से रचित पर्यावरण में संतुलन आवश्यक है। प्रकृति और मानव जीवन में जन्मजात सामर्थ्य रहा है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त आठ ऐसे चिकित्सक हमें प्राप्त हैं, जिनके सहयोग तथा उचित सेवन से हम

ISSN No. 2347-2944,RNI TITLED No. UPBIL04292
RNI REG. No. UPBIL/2014/66218, SOCLREG. No. 561/2013-14

यथासम्भव आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं। वे चिकित्सक हैं– वायु, आहार, बल, उपवास, सूर्य, व्यायाम, विचार और निद्रा। प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रतिपादित मंत्र इसी भावना से संकलित थे। अथर्ववेद का निम्न मंत्र उक्त तथ्य की पुष्टि करता है–

''यस्य भूमि प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मे ज्येष्ठाया ब्रह्मणे
नमः।।''[16]

वेद मंत्रों में मधुर लोकजीवन की अभिव्यक्ति हुई है। ऋग्वेद में कहा गया है कि ''हमारे लिए हवाएँ मधुरतापूर्ण रस बहाकर लावें, नदियों का पानी हमारे लिए मीठा तथा सारी वनस्पतियाँ भी हमारे लिए मधुरता प्रदान करें। दिन, रात्रि, उशा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, वनस्पति, सूर्य, चन्द्र, गायें– ये सभी मधुरता प्रदान करें।''[17]

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह पूर्णतः स्पष्ट है कि पर्यावरण चेतना और संरक्षण के मीमांसा के भी मूल स्रोत वेद ही हैं। वेदों में लोक कल्याण की मंगलकामना है। वैदिक ऋषियों ने मानव–जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्त्व, प्रकृति से सानिध्य, संवेदनाशीलता, पर्यावरण संरक्षण एवं आरोग्य सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान–सम्पदा से वैदिक वाङ्मय को पुष्पित पल्लवित किया। अपनी समष्टिवादी, अध्यात्मवादी प्राकृतिक शक्तियों के उपासक 'दयताम्, दीयताम्, दम्यताम्' के आदर्शों को स्वीकार करते हुए वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के साथ तादात्म्य स्वीकार करके पर्यावरणीय शक्तियों को परमसत् के अंश के रूप में स्वीकार किया और उसमें नैतिकता व शुचिता का विशेष आधानकर इस मानव जगत् को यह संदेश दिया कि पर्यावरण–संरक्षण से लोककल्याण– जनकल्याण सम्भव है। मानवीय आचरण का आदर्श पर्यावरण समकक्षा (Environmental Equilibrium) है। प्रकृति से उतना ही लो जितना उसे दे सको। मानव एवं प्राकृतिक परिवेश में संतुलन और प्राकृतिक तत्त्वों में नैसर्गिक विशिष्टता की मंगलमय व्यापक भावना में ही लोक–कल्याण सन्निहित है।

संदर्भः–

1. यजुर्वेद, 36.17।
2. यजुर्वेद, 07.45।
3. शुक्रनीति, 01/02।
4. हितोपदेश, 02/75।
5. अथर्ववेद, 18/01/17।
6. अथर्ववेद, 03/21/10।
7. अथर्ववेद, 08/02/25।
8. ऋग्वेद, 05/52/53 एवं 05/54/04।
9' अथर्ववेद, 06/23/03।
10. अथर्ववेद, 12/01/135।
11. ऋग्वेद, 08/20/25।
12. ऋग्वेद, 06/48/22।
13. अथर्ववेद, 01/13/04।
14. ऋग्वेद, 10/63/10।
15. ऋग्वेद, 04/57/03।
16. अथर्ववेद, 10/07/32।
17. ऋग्वेद, 01/90/6–8।